GRT
Golden Research Thoughts
ISSN: 2231-5063 Impact Factor : 4.6052(UIF) Volume - 6 | Issue - 6 | December - 2016

अंधेर नगरी में रंग प्रयोग

ओम प्रकाश बैरवा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग , दिल्ली विश्वविद्यालय.

प्रस्तावना

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत 'अंधेर नगरी' प्रहसन एक सर्वाधिक सफल एवं मंचीय नाटक है। जितनी प्रखर व्यंग्य चेतना के रूप में अंधेर नगरी प्रसिद्ध है, उतनी ही इसकी रंगमंचीय प्रस्तुति। क्योंकि ऐसा उल्लेख मिलता है कि इसकी रचना ही तत्काल समय में रंगमंचीय प्रस्तुति की मांग पर की गई थी। तब से लेकर आज तक इसकी सैकड़ों रंगमंचीय प्रस्तुति हो चुकी है। हर निर्देशक इसे अपने ढ़ंग से खेलता है, फिर भी इसकी मूल व्यंग्य चेतना उतनी ही प्रभावित करती है जितनी की स्वंय भारतेन्दु के युग में। इतना ही नहीं "इसकी प्रस्तुति उत्तर भारत में नहीं, अपितु अहिन्दी भाषी प्रदेशों में भी बाल रंगमंच से लेकर परिपक्व रंगमंचों तक हुई है।"[1]

सर्वप्रथम यह नाटक काशी के हिन्दू नेशनल थियेटर द्वारा खेला गया। फिर प्रतापनारायण मिश्र के प्रयास से सन् 1882 में कानपुर में इसका मंचन हुआ। तत्पश्चात सन्1884 में इसका मंचन बलिया में हुआ जिसका उल्लेख आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी अपने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में किया है। उसी वर्ष

डुमराव में भी इसका प्रदर्शन हुआ।

गौरतलब है कि भारतेन्दु के जीवनकाल में ही अंधेर नगरी में अनेक रंग प्रयोग हुए। बाबू गोपालराम गहमरी ने काशी के 'आज' (28 अप्रैल, 1927) में भारतेन्दु के अन्य प्रदर्शित नाटक 'सत्य हरिश्चन्द्र' के साथ 'अंधेर नगरी' का भी मंचन हुआ है, के विषय में लिखते हैं कि -"बयालीस वर्ष पहले की बात है जब काशी के भारतेन्दु बाबु हरिश्चन्द्र नाटक स्वंय हरिश्चन्द्र बनकर खेला था जिसमें हिन्दी के 'दु:खिनीबाला' के लेखक बाबू राधाकृष्ण दास सरीखे हिन्दी सेवक और रविदत्त शुक्ल जैसे कवियों ने पार्ट लिया था। उस समय पर्दों और सीनों का जमाव नहीं था लेकिन जो कुछ स्टेज बना था- बजाज के कपड़े तानकर जो काम भरतेन्दु ने कर दिखाया था उसकी महिमा यूरोपीयन लेडियों तक ने गाई थी।"[2]

एक यथार्थवादी पद्धति का संस्मरण प्रसिद्ध नाटककार - निर्देशक डॉ. सत्यव्रत सिन्हा ने इस प्रकार दिया है - "जहाँ तक मुझे स्मरण है अंधेर नगरी की एक प्रस्तुति मैंने

---

1. 'अंधेर नगरी' सृजन - विश्लेषण और पाठ : रमेश गौतम
2. 'अंधेर नगरी' संवेदना और शिल्प : सिद्धनाथ कुमार

सन् 1960 के आस-पास देखी थी, जस का तस प्रस्तुत करने का प्रयास था। सामने बाजार दृश्य में मिठाई , आटा, दाल-चावल आदि सहीं-सहीं बिक रहे थे, बाबा और उनके चेले शुद्ध परम्परावादी थे और राजा दृश्य में राजा, मंत्री, फरियादी, कल्लू बनिया, कारीगर, चूनेवाला, भिश्ती, कसाई, गड़ेरिया और कोतवाल, पारसी थियेटर की याद दिला रहे थे। अंत का फाँसी का दृश्य वैसा ही था- सन् 1960 के प्रेक्षक पर अनुकुल नहीं पड़ा क्योंकि निर्देशक की समझ और दृष्टि, रंगकर्मियों की प्रतिभा, प्रस्तुति - पद्धति आदि के प्रयोगों पर निर्भर था।"[3]

सन् 1965 में 'प्रयाग रंगमंच' की ओर से डॉ. सत्यव्रत सिन्हा ने 'अंधेर नगरी' का मंचन एक अलग ही ढ़ंग से किया - "'अंधेर नगरी ' को नए सन्दर्भ में स्थापित करने की चेष्टा की गई। वेशभूषा प्राय: आधुनिक रखी गई- मंत्री को पेंट कोट पहनाया गया, सब्जी वाली स्लैक्स में आयी। अभियुक्तियों के लिए मुखौटों का व्यवहार किया गया। "[4]

हिन्दी रंगमंच की गत वार्षिकी के अवसर पर अंधेर नगरी को एक बार फिर डॉ. सत्यव्रत सिन्हा ने बिल्कुल समसामयिक नाटक के रूप में मंचन किया। उन्होंने निर्णय किया कि 'एक भी नया शब्द, नया संवाद नहीं जोड़ूंगा' सन् 1881 की भाषा अपने मूल रूप में सुरक्षित रहेगी, फिर भी उस पर 'वर्तमान अंधेर नगरीत्व' का आरोपण किया जाएगा, जिससे वर्तमान की समस्त कुण्ठा- वहशीपन, नकलची प्रवृति और काल से उत्पन्न

खोखलेपन आदि को अभिव्यक्त किया जा सके। समकालीन नाटक की दृष्टि से उसके पात्र नए रूपों में उसकी परीकल्पना में आने लगे- बाबा यानी आज के शुभ्र वेशधारी धन सम्पन्न योगी जिन्होंने विदेशों से अपना नाता जोड़ रखा है, दोनों चेले यानी हिप्पी- बीटनिक संस्कृति से प्रभावित नयी पीढ़ी, राजा अर्थात् सत्तालोलुप सिद्धांतहीन नेता, फरियादी यानी सामान्य जन जो सदियों से न्याय मांग रहा है आदि -आदि। दृश्यों की परिकल्पना भी नये रूप में की गई, उदाहरण के लिए बाज़ार-दृश्य के अंत में मग्न होता हुआ चेला गोवर्द्धन और पूरे रंगमंच पर एक भयानक सन्नाटा छा जाता है और उस सन्नाटे में जैसे स्वपन में, फुसफुसे स्वर में सब्जीवाला चने जोर गरम वाला, जातवाला और बनिया क्रमश: भाजी टके -सेर, चने-जोर गरम टके सेर, जात टके सेर, आटा ,दाल-चावल टके सेर कहते हुए चेले गोवर्द्धन दास की अओर बढ़ते हैं- तब ऐसा प्रतीत होता है कि भयानक भवँर में वह डूबता हुआ सा एक स्थान पर भय तथा आश्चर्य से सबको घूम-घूम कर देखता जाता है, फुसफुसाहट का स्वर क्रमश: तीव्र होते-होते चरमसीमा पर पहुँचता है और गोवर्द्धन दास 'बाबा' कह कर जोर से चीखता है और चीखने के साथ पुन: सब के सब जड़ हो जाते, सन्नाटा छा जाता है और सभी पात्र अपनी जड़ स्थिति समाप्त कर राजा-दृश्य के निर्माण में लग जाते हैं। फाँसी दृश्य में भूखी नंगी जनता की अवधारणा की गई थी। मंच की व्यवस्था अनेक स्तरीय थी। 'अंधेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' शीर्षक

3.हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा : जयदेव तनेजा
4. हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा : जयदेव तनेजा

गीत नितांत आधुनिक स्वर में गाकर टेपबद्ध कर लिया गया था। नई निर्देशकीय उद्भावनाओं के फलस्वरूप भरतेन्दु का सौ साल पुराना नाटक नया बना और स्वातंत्र्योत्तर भारत के परिवेश में आज की चेतना को व्यक्त में समर्थ हुआ।

अंधेर नगरी को नए ढंग से प्रस्तुत करने का काम डॉ. सत्यव्रत सिन्हा के अलावा डॉ जीवन लाल गुप्त ने भी किया है। स्वंय उनके शब्दों में -"अंधेर नगरी सबसे पहले मैंने अपने निर्देशन में प्रस्तुत किया था। सत्यव्रत सिन्हा ने बाद में उसे अपने ढंग से प्रस्तुत किया। मेरी प्रस्तुति में राजा की परिकल्पना एक राजनीतिक सोच के तहत थी।"[5] डॉ. गुप्त ने राजा को एक आधुनिक मंत्री के रूप में प्रस्तुत किया था- गाँधी टोपी, अचकन और चूड़ीदार पायजामा। किंतु सत्यव्रत सिन्हा ने सभी पार्टियों के बिल्ले पहन कर रजा की भूमिका की ठीक और इस प्रकार उन्होंने राजा को कोई निश्चित राजनीतिक चरित्र नहीं दिया था। डॉ. गुप्त ने उसे अपने परिवेश का मंत्री बनाया और नाटक के पूरे घटनाक्रम को- बकरी के दबने से लेकर राजा को फाँसी चढ़ने तक- सरकारी कार्य पद्धति यानी लालफीता शाही से जोड़ दिया और यह दिखलाने का प्रयत्न किया कि आज का मंत्री कैसे अपनी गलतियों का दोष दूसरों पर लगाता है और अंत में स्वंय अपने ही बनाये जाल में फँसकर विनष्ट होता है।

प्रसिद्ध नाट्य निर्देशक और रंगकर्मी ब.व.कारंत की प्रस्तुति भी चर्चा का विषय रही है। जहाँ सत्यव्रत सिन्हा की प्रस्तुति में आधुनिक उपकरणों, भाव-भंगिमाओं, नृत्य, संगीत आदि का आग्रह विशेष रूप से था वहीं कारन्त ने लोकनाट्य तत्वों को विशेष महत्व दिया। यह प्रस्तुति कारंत के निर्देशन में 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय'(NSD) के प्रथम वर्ष के छात्रों द्वारा दिल्ली के बहावलपुर हाऊस के खुले मंच पर हुई। तीन ओर दर्शकों के बैठने के लिए जगह और चौथी ओर भवन की दीवार से लगा मंच। दर्शक, समीक्षक, जयदेव तनेजा ने विवरण दिया है-"नाट्यारम्भ की सूचना के उपरांत प्रेक्षागृह में अंधेरा और उसके साथ ही पीछे की गैलरी के दूसरे छोड़ पर अनेक दीपकों का सम्मिलित प्रकाश, घूम-घूम और ढ़ोलक मंजीरों की कीर्तन-ध्वनि के साथ-साथ उभरते स्त्री-पुरूष कण्ठों के मंगल स्वर। गैलरी के प्रत्येक खम्भे पर दीप धरकर नाचते-गाते हुए हुए वसंती और गेरुआ वस्त्र (चादर) पहने पैतींस- छत्तीस पात्रों का प्रवेश। संगीत मण्डली सामने मंच पट्टी पर बैठ जाती है। भजनों और नारों की मिली-जुली लय से नृत्य-गान करते हुए ये पात्र किसी भ्रष्ट, मूल्य - ध्वस्त एवं अंधन्यायुक्त नगरी को प्रतिष्ठित कर के मंच के गोलाकार किनारे पर बैठ जाते है। प्रमुख पात्र अपनी चादरें उतारकर विशिष्ट चरित्रों के रूप में मंच के बीचों बीच आकर ऐसा रंगस्थ-खेल आरम्भ करते हैं, जो सचमुच दर्शकों का मन मोह लेता है। "[6]

---

5. नाट्यकार भारतेन्दु की रंग परिकल्पना : सत्येन्द्र कुमार तनेजा
6.हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा : जयदेव तनेजा

इस प्रस्तुति में भी यथार्थ दृश्यबंध को अस्वीकार किया गया। कोरस का इस्तेमाल लगातार किया गया। अंत में दिखलाया गया कि अंध -न्याय से मुक्ति दिलाने वाला महंत स्वंय चौपट राजा बन जाता है इस प्रकार संकेत दिया गया कि जब तक व्यवस्था में

मूलभूत परिवर्तन नहीं होता तब तक यह अवांछित व्यवस्था चलती रहेगी। स्पष्टत: इससे नाटक के अर्थ का विस्तार हुआ। इस पद्धति की सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात निर्देशक की लोकनाट्य -दृष्टि रही, जिसे रेखांकित करते हुए समीक्षक ने निष्कर्ष दिया है- "अनुष्ठानात्मक वातावरण, नृत्य-गीत संगीत, लोक-रंग-रूढियों का खुला इस्तेमाल राजा के अभिनय में यक्षगान की विशिष्ट गतियाँ, मुद्राएँ, परम्परागत गेरुए और बसंती रंग का प्रयोग-नाटक, भाषा-शिल्प, प्रस्तुति और प्रभाव- सभी दृष्टियों से यह प्रदर्शन भारतीय रंग-दृष्टि की कलात्मक सृष्टि प्रतीत हुआ।"[7]

इसी क्रम में पटना जननाट्य संघ की एक प्रस्तुति की भी चर्चा की जा सकती है। सन् 1985 में भारतेन्दु शतवार्षिकी समारोह के अन्तर्गत इप्टा(भारतीय जननाट्य संघ) ने पटना में भारतेन्दु के 'अंधेर नगरी' का निर्देशन जावेद अख्तर ने किया था, जो इससे पहले अनागत और इप्टा संस्थाओं की ओर से इस नाटक को कई बार प्रस्तुत कर चुके थे। दर्शक समीक्षक महेश आनंद ने लिखा है- 'अंधेर नगरी की यह प्रस्तुति खाली रंगमंच पर हुई और इसमें कोरस का आधार बनाकर व्यंग्य को उभारने का प्रयत्न किया गया। एक और से 'अंधेर नगरी चौपट राजा' कहते पात्र चादर लपेटते हुए मंच पर आते हैं और दूसरी ओर से 'राम भजो भई राम भजो' गाते महंत अपने दोनों चेलों के साथ प्रवेश करते हैं। इन्हीं में से पात्र विशेष भूमिकाएँ ग्रहण कर लेते हैं या दृश्य विशेष का संयोजन करते हैं। कोरस के पात्र धूसर रंग की चादर का इस्तेमाल रंगोपकरण के रूप में कर के दृश्यबन्ध का समायोजन करते हैं, और कभी उसे पहंकर भूमिकाएँ प्रस्तुत करते है। नाटक के अंत में 'सारे जहाँ से अच्छी अंधेर नगरी हमारी' समूहगान आता है जो समीक्षक की दृष्टि से व्यंग्य को मन्द ही नहीं करता, बल्कि किसी सार्थक बिन्दु पर ले जाने से भी रोकता है।"[8]

ऐसी ही एक प्रस्तुति संगीत नाटक अकदमी, दिल्ली के सहयोग से छत्तीसगढ़ अंचल में नट-चुन्देला के बीच रंगकर्म नए मुहावरे तलाशते ख्यात निर्देशक अलखनंदन द्वारा
1 मार्च,1933 से 3 मार्च 1933 तक 'जगर मगर अंधेर नगर' के नाम से हुई। इस प्रदर्शन -आलेख में अलखनंदन ने कथा के अंत में कुछ प्रयोग किए हैं वह यह कि -'अंधेर नगरी' में जहाँ केवल राजा ही अंत में फाँसी पर चढ़ता है वहीं इन्होंने अपने आलेख में राजा को अपने साथ कोतवाल, मंत्री, महंत,चेलों व सैनिकों को भी वैकुण्ठ ले जाने के लिए प्रस्तुत दिखाया है और राजा सभी को फाँसी का आदेश देता है। लेकिन सैनिक यह कहकर बच जाते हैं कि उन्हें वैकुण्ठ नहीं जाना है उनका स्वर्ग-नरक इसी दुनिया में है और कोतवाल, मंत्री का महंत, चेला को लेकर राजा फाँसी पर चढ़ जाता है।"[9]

---

7. हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा : जयदेव तनेजा
8. 'नटरंग' पत्रिका अंक- 46
9. 'छायानट' अंक- 48

इस प्रस्तुति की समीक्षिका रेखा वर्मा लिखती है कि- " अलखनन्दन का मानना है कि अब सिर्फ राजा ही नहीं तर्कजाल में फँसने वाले महंत, अपने ही तर्कों में उलझाकर व सत्ता को खोखला करने वाले राजा के परामर्शदाता मंत्री व कोतवाल भी खत्म होंगे।[10] वस्तुत: इस प्रस्तुति में महंत की साकारत्मक भूमिका को नकारा गया है जो रचना के महंत से भिन्न है जिसमें उसे समाज और राष्ट्र के पथ्ज प्रदर्शक रूप में पेश किया गया था। भार्तेन्दु की 'अंधेर नगरी' का महंत पाश्चात चमक-धमक से समाज को बचाने का प्रयास करता है। किंतु अलखनंदन ने महंत को फाँसी पर चढ़ाकर संपूर्ण विद्वान जाति पर अपना अविश्वास प्रकट करते हुए जनता के स्वंय जागृत होने की संभावना को व्यक्त किया है। इस रूप में प्रयोग करके अलखनंदन ने 'अंधेर नगरी' के नए अनुभवों का द्वार खोला है।

इस प्रकार रंगकर्मियों द्वारा 'अंधेर नगरी' के प्रदर्शन-संदेश को समयानुरूप बदलकर नया अनुभव संसार गढ़ा गया। चूँकि 'अंधेर नगरी' की संदर्भ सापेक्षता अंतहीन है और समय के बहाव और परिवर्तन की हर स्थिति को अपने अंदर समाहित करते हुए यह नाटक अपने रचनाकाल से लेकर अब तक के जीवन की विडम्बनाओं और विद्रूपताओं को नए-नए अनुभवों में ढ़ालकर कहता आया है। यही इस नाटक/प्रहसन की सबसे बड़ी शक्ति है।

---

10. 'छायानट' अंक- 48

सन्दर्भ पुस्तकें

1. 'अंधेर नगरी' सृजन -विश्लेषण और पाठ : रमेश गौतम

2. 'अंधेर नगरी' संवेदना और शिल्प : सिद्धनाथ कुमार
3. हिन्दी रंगकर्म : दशा और दिशा : जयदेव तनेजा
4. नाट्यकार भारतेन्दु की रंग परिकल्पना : सत्येन्द्र कुमार तनेजा
5. 'नटरंग' पत्रिका अंक- 46
6. 'छायानट' अंक- 48
7.'अंधेर नगरी' (मूल पाठ) - भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

ओम प्रकाश बैरवा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग , दिल्ली विश्वविद्यालय.